International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 3, May 2022 |

प्रेमचन्द साहित्य में सामाजिक चेतना

Rakesh Kumar Sharma

Assistant Professor in Hindi, Government College, Behror, Alwar, Rajasthan, India

सार

जन्म काशी के निकट लमही ग्राम में 31 जुलाई, 1980 को हुआ था। कुछ बीघा ज़मीन और बीस रुपए मासिक वेतन, इतनी-सी आय से प्रेमचन्द के पिता लाला अजायबराय पूरे घर का खर्च चलाते थे। प्रेमचन्द अभी सात वर्ष के ही थे कि माँ चल बसी, पन्द्रह वर्ष के हुए कि प्रेमचन्द का विवाह हो गया और सोलहवां वर्ष भी उनकी आयु के पूरे नहीं हुए कि पिता का स्वर्गवास हो गया। बचपन में ही गृहस्थी की ज़िम्मेदारी उनके कंधों पर आ पड़ी। सौतेली माँ, दो सौतेले भाई, पत्नी और स्वयं-पाँच प्राणियों के भरण-पोषण की समस्या और अपनी पढ़ाई-यह सब कुछ उन्हें निभाना था। सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पंडे-पुरोहितों का निर्मम कर्मकांड, किसानों और क्लर्कों का दुःखी जीवन यह सब प्रेमचन्द ने सोलह साल की अवस्था में ही देख लिया था। इसलिए उनके ये कटु अनुभव एक सत्य बनकर उनके कथा-साहित्य में झलक उठे थे। गाँव से पाँच मील चलकर शहर के स्कूल में जाकर पढ़ना, ट्यूशन पढ़ाना, फिर घर आकर कुप्पी की रोशनी में पढ़ना, इस प्रकार प्रेमचन्द ने हाईस्कूल किया था, मेहनत से चूर और बीमार होकर। गणित के कारण इंटर में दो बार फेल होना पड़ा और तब पास हुए जब इंटर में गणित ऐच्छिक विषय बना दिया गया, फिर तो उन्होंने बी.ए. भी कर लिया। किंतु "प्रेमचन्द को जहाँ वास्तविक शिक्षा मिली वे विश्वविद्यालय दूसरे ही थे। उनके अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और किताबों के नोट्स बिकवाने वाले बुकसेलर थे। उनकी टेस्टबुकें वे सैंकड़ों उपन्यास थे जो उन्होंने लाइब्रेरियों, बुकसेलरों की दुकानों और तमाखूवाले दोस्त के घर पर पढ़े थे। भले ही वे गणित पढ़ने योग्य न रहे हो, वे हिन्दुस्तानी समाज का बीजगणित अच्छी तरह समझ गए थे और अपने उपन्यासों में बहुत-से प्रश्न हल करने की तैयारी भी कर चुके थे।'1 कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने का चस्का उन्हें बहुत पहले लग चुका था। ये उपन्यास उनके दुःखी बचपन के साथी थे, जो उन्हें ढाढ़स बँधाते थे और कुछ देर के लिए वास्तविक जीवन से दूर ले जाते थे। इन उपन्यासों ने उनकी कल्पनाशक्ति को प्रखर बनाया और उन्हें खुद लिखने की प्रेरणा दी।

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में कथा सम्राट, पत्रकार, नाटककार और एक महान् सम्पादक के रूप में स्थापित है। वे साहित्य को मनोरंजन से ऊपर उठा कर जीवन की गम्भीर समस्यओं और यथार्थ रूप से जोड़ते हैं। उन्होंने अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए साहित्य को चुना क्योंकि साहित्य ही जीवन की विस्तृत व्याख्या करने और उसे परिवर्तित करने में समर्थ है। उन्होंने अपने लेखन में जो कथानक चुना है, उनका आधार भारतीय नागरिक और ग्रामीण समाज के विविध वर्ग हैं। प्रेमचन्द अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को उस समय प्रभावित किया जब देश राष्ट्रीय नवजागरण और सुधारवादी मनोवृत्ति से गुज़र रहा था। वे अपनी लेखनी के माध्यम से मध्य और निम्न वर्ग के उन लोगों के स्वर को वाणी दे रहे थे जो सदियों से शोषित और अत्याचार से त्रस्त थे। वे अपने लेखन के माध्यम से साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, पूंजीवाद आदि की चुनौती को स्वीकार कर स्थिति को बदलने की कोशिश कर रहे थे। वे समाज की उन समस्याओं को बदलने की कोशिश कर रहे थे जो जड़ पकड़ चुकी थीं और वे अपने इस उद्देश्य में काफी हद तक सफल भी हुए हैं। वह नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं जैसे बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा जीवन आदि कई पक्षों पर एक सजग लेखक की दृष्टि से विचार करते हैं। वे नारी जाति के उत्थान को समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक मानते हैं। वे जातिप्रथा, मध्यवर्ग की संकुचित मानसिकता, अशिक्षा, निर्धनता प्रचलित रूढ़ियों, अन्धविश्वास आदि को समाज की प्रगति में बाधक मानते हैं।

परिचय

'सर्जनपीठ', प्रयागराज के तत्त्वावधान में आज (३१ जुलाई) एक आन्तर्जालिक राष्ट्रीय बौद्धिक परिसंवाद का आयोजन किया गया। प्रेमचन्द की १४१ वीं जन्मतिथि के अवसर पर आयोजित 'प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ' विषय पर देश के प्रतिष्ठित प्रबुद्धवर्ग की प्रभावकारी वैचारिक भागीदारी रही।इस अवसर पर आशा राठौर (सहायक प्राध्यापक– हिन्दी-विभाग, शासकीय महाविद्यालय, हटा, दमोह (म०प्र०) ने कहा, "प्रेमचन्द जी हिन्दी के एक ऐसे आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक यथार्थ का चित्रण तो किया ही है, श्रेष्ठ मानव-समाज के स्थापना-हेतु पथप्रदर्शन भी किया हैं। उनके साहित्य के केन्द्र में मानव-समाज है। तत्कालीन

समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, दहेज-प्रथा, स्त्री-शोषण, वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, विधवा-समस्या, जातीय भेदभाव और छुआछूत, साम्प्रदायिक विद्वेष, धार्मिक कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, सामन्ती संस्कार और सर्वप्रमुख पद-दलित मानव एवं कृषक-वर्ग की ऋण समस्या को केन्द्र में रखकर उनके कथा एवं उपन्यासों का ताना-बाना बुना गया है। 'प्रेमाश्रम', 'गोदान', 'गबन' 'कर्मभूमि' 'रंगभूमि' आदिक ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें तत्कालीन मानव-समाज जीवन्त हो उठा है।"पंकज कुमार दुबे (विभागाध्यक्ष– हिन्दी, डी० ए० वी० मॉडल स्कूल, दुर्गापुर, पश्चिम बंगाल) का मत है, "मुंशी प्रेमचन्द सामाजिक संवेदना के संवाहक माने जाते हैं। उनके उपन्यासों में मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के यथार्थ का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक रूप से किया गया है। अगर हम उनके प्रसिद्ध उपन्यासों की बात करें तो वह समाज में व्याप्त बुराइयों को दर्शाते हैं। 'सेवासदन' में उन्होंने तत्कालीन जनचेतना और जन-आकांक्षा को वाणी दी है। प्रेमचंद ने जहाँ 'प्रेमाश्रम' में विधवा समस्या और ग़रीब किसानों पर होनेवाले अत्याचार पर विचार किया है वहीं 'सेवासदन' में नारी-पराधीनता के एक महत्त्वपूर्ण अंश वेश्या- समस्या के मूल कारणों और उसके निराकरण पर भी विचार किया है। प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में ग्रामीण-जीवन, मज़दूरों और किसानों पर होनेवाले निर्मम अत्याचार, व्यक्तिगत सम्बन्ध, पारिवारिक जीवन की समस्याओं, सामाजिक समस्याओं आदिक को दर्शाया है। 'निर्मला' में प्रेमचंद ने दहेजप्रथा-जैसी सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफ़ाश करते हुए बेमेल विवाह के परिणाम को दिखाया है। मुंशी प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में सामाजिक परिवर्त्तन और ग़रीब किसान-मज़दूर के शोषण, वेश्यावृत्ति, बालविवाह, विधवा-समस्या-जैसी सामाजिक बुराइयों के प्रति समाज को आईना दिखाने का प्रभावपूर्ण कार्य किया गया है।"

राघवेन्द्र कुमार त्रिपाठी 'राघव' (सम्पादक– आई०वी०24 न्यूज़ और 'अवध रहस्य' राष्ट्रीय साप्ताहिक समाचारपत्र, लखनऊ) की अवधारणा है, "मुंशी प्रेमचन्द के कर्तृत्व में आदर्शवाद और यथार्थवाद का अनोखा मेल दिखता है; साथ ही प्रेम, करुणा, रुढ़िवाद, समाज-सुधार, स्त्री-व्यथा, मध्यवर्गीय मनुष्य की त्रासदी, कृषक-जीवन की समस्याएँ, मिहनतकश जनता का संघर्ष आदिक जीवन-संदर्भों का प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। इन सभी विशेषताओं के बावुजूद, प्रेमचन्द का साहित्य वामपन्थी खण्डहर में चीख़ता दिखता है। एक ओर प्रेमचन्द के ग़रीब पात्र परिश्रमी होते हुए दो बूँद पानी के लिए तरसते हैं तो दूजे ओर साहूकारों-ठाकुरों के खेत-खलिहानों-घरों में काम करते हुए भी अछूत दिखते हैं। प्रेमचन्द के साहित्य में क्रान्ति का ओजस्वी स्वर है; लेकिन क्रान्ति की धरा उर्वर नहीं दिखती।"

चेतना चितेरी (कवयित्री, प्रयागराज) ने बताया, "दलित शोषित-सर्वहारा-वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवाले लोकप्रिय साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द का साहित्य-जगत् में आगमन अप्रतिम स्थान रखता है। युग की वाणी को मुखरित करनेवाला साहित्य ही महान् होता है। साहित्यकार के संस्कार और उसकी प्रतिभा की समन्वित शक्ति ही युग-चेतना को ग्रहण कर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करती है। इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रेमचन्द अग्रणीय है। सामाजिक चेतना का मुख्य स्वर उनके उपन्यासों में उभरता दिखता है। उनकी इस औपन्यासिक गुणों से समन्वित प्रतिभा का आकलन करने के उपरान्त बांग्ला-कथाकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें 'उपन्यास-सम्राट्' की संज्ञा से विभूषित किया था।"

आदित्य त्रिपाठी (सहायक अध्यापक, हरदोई) का कहना है, "प्रेमचन्द के साहित्य ने निश्चित तौर पर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध कर उसे एक अर्थपूर्ण दिशा दी है। प्रेमचन्द आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने वह अपने दौर में रहे हैं। कृषक-जीवन पर उनकी पकड़ और यथार्थवादी लेखन देखकर उनकी प्रासंगिकता स्वतः बढ़ जाती है। महिलाओं के विषय में भी प्रेमचन्द के विचार और लेखन गम्भीर प्रकृति का है। उनके महिलावादी दृष्टिकोण से आनेवाले लेखकों ने सीख भी ली; लेकिन अपने साहित्य से उलट वे निजी जीवन में स्वान्तः सुखाय का अनुकरण करते पाये जाते हैं। प्रेमपाश में जकड़े प्रेमचन्द ने अपनी धर्मपत्नी को मनोनुकूल न पाते हुए एक बालविधवा शिवरानी देवी से विवाह कर लिया और अपनी पत्नी को अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश कर दिया। प्रेमचन्द के साहित्य का आधार अगड़ों का विरोध है और तत्कालीन समय के समाजवादी आन्दोलन के साये में इसी के बूते कथा-साहित्य के महान् हस्ताक्षर बन जाते हैं।"

शकुन्तला (सहायक प्राध्यापक– हिन्दी-विभाग, आइ० बी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पानीपत, हरियाणा) ने कहा, "मुन्शी प्रेमचन्द जी अपने साहित्य में सामाजिक जीवन के यथार्थ का परिचय देनेवाले ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में ग़रीब कृषक की दयनीय स्थिति, दहेज-प्रथा, बेमेल विवाह, भेदभाव, छुआछूत, पिछड़ापन, नशा, अशिक्षा, भूमि-अधिग्रहण, भारतीय युवाओं के गिरते नैतिक मूल्यों आदिक विभिन्न सामाजिक बुराइयों को दर्शाया है। उनके सामाजिक उपन्यास लिखने का मुख्य प्रेरणास्रोत सामाजिक जीवन और समाज-कल्याण के प्रति उनका उत्साह था। यथार्थवादी चित्रण और समस्याओं के विश्लेषण के साथ समाज को जागरूक करना ही उनका उद्देश्य था।"

रणविजय निषाद (प्रभारी प्रधानाध्यापक, उच्च प्राथमिक विद्यालय, कन्थुआ, कड़ा, कौशाम्बी) ने बताया, "प्राचीनकाल से अद्यतन कहानियाँ कई रूपों में लिखी जा रही हैं, जिनमें साहित्यकार वैयक्तिक निराशा, कुण्ठा, आघात-प्रतिघात तक ही सीमित रहते हैं, जबकि मुंशी

प्रेमचन्द जी की कहानियाँ समाज-द्वारा तिरस्कृत वर्ग को जिजीविषा के लिए प्रेरित करती दिखती हैं। उनका कथालोक देशभक्ति, दया, करुणा, ईमानदारी आदिक को रेखांकित करते हुए सकारात्मक मूल्यों से युक्त है।"

डॉ० सपना दलवी (हिन्दी-प्राध्यापक, कुमारेश्वर पदवी पूर्व कॉलेज, सवंदती, धारवाड़, कर्नाटक) ने बताया, "प्रेमचन्द ने उपन्यासों के माध्यम से, शिक्षा, धर्म, अस्पृश्यता, नारी- स्थिति, किसानों का शोषण आदिक का चित्रण कर, समाज में नयी चेतना जाग्रत् की थी। उन्हें अपने समय के समाज की गहरी समझ थी, जिस कारण वे हमेशा समाज में किसी भी तरह के छुआछूत का शक्त विरोध करते थे। प्रेमचन्द वर्णव्यवस्था, ऊँच- नीच के भेदभाव और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदने को राष्ट्रीयता की पहली शर्त मानते थे। शास्त्रों की आड़ में दलितों के मन्दिर प्रवेश को पाप ठहराने वालों को जवाब देते हुए प्रेमचन्द ने ऐसे लोग की विद्या-बुद्धि-विवेक पर सवाल उठाये थे।"

आचार्य पं० पृथ्वीनाथ पाण्डेय (परिसंवाद-आयोजक, प्रयागराज) ने कहा, "प्रेमचन्द सामाजिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के लेखक हैं, इसीलिए उनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का प्रत्यक्षीकरण होता रहता है। प्रेमचन्द हिन्दी के ऐसे प्रथम कथाशिल्पी हैं, जिन्होंने कथा विषय को सामाजिक यथार्थ की सुदृढ़ शिला पर प्रतिष्ठित किया है। उपन्यास के क्षेत्र में उद्देश्य, कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, शिल्पगत विधान, परिवेश तथा संज्ञान में संज्ञात चेतना और वास्तविक जीवन का स्पन्दन है। हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तियों, विषय-वस्तुओं, रूप-विधानों तथा उपकरणों का अनुशीलन करने के पश्चात् निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रेमचन्द का कर्तृत्व असाधारण क्रान्तिकारी, यथार्थवादी तथा राष्ट्रीय जीवन-धारा के सन्निकट रहा है।"

विचार-विमर्श

हिंदी लेखक प्रेमचंद (1880 -1936) बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के लेखक थे, और उन्हें गुजरे हुए जमाना हो गया, फिर भी कई मायनों में वह आज भी आश्चर्यजनक रूप से प्रासंगिक हैं. उनकी प्रासंगिकता कमसे कम मुझे उत्साहित नहीं करती; कुछ अर्थों में वह तकलीफदेह ही कही जानी चाहिए. यह इसलिए कि वह इस बात का परिचायक है कि प्रेमचंद- कालीन समाज और आज के समाज में कोई बड़ा अंतर नहीं आया है. यह एक ठहरे हुए गतिहीन अथवा सुस्त समाज के लक्षण हैं. इस गतिहीनता पर केवल अफ़सोस ही व्यक्त किया जा सकता है. इसलिए ही मैंने बतलाया कि उनकी प्रासंगिकता हमारे अंतरमन में अपने किस्म की एक उदासी सृजित करती है.

प्रेमचंद का जन्म उन्नीसवीं सदी में हुआ और उनका लिखना बीसवीं सदी के आरम्भ में शुरू हो गया. विषय के आकलन केलिए हमें उस दौर की सामाजिक -राजनैतिक स्थिति का स्मरण करना चाहिए. उनके जन्म के पांचवें वर्ष में ही इंडियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हो गया था और कमोबेश एक राष्ट्रीय चेतना का स्फुरण देश अनुभव करने लगा था. लेकिन ये तमाम स्फुरण बंगाल और महाराष्ट्र तक ही सीमित थे. प्रेमचंद का हिंदी इलाका इस चेतना से तनिक दूर था. पुरोहिती -कर्मकांडी नगर काशी -बनारस से कुछ ही किलोमीटर दूर उनका गांव लमही था. बनारसी साड़ियों के लिए मशहूर बनारस में कभी कबीर जैसा बौद्धिक हुआ था, और बगल के सारनाथ में ढाई हज़ार वर्ष पूर्व बुद्ध ने अपने क्रान्तिकारी धर्म -दर्शन का पहला उद्घोष किया था; लेकिन प्रेमचंद के समय का बनारस पण्डे -पुरोहितों का नगर था – सुस्त ,काहिल और विचारशून्य . प्रेमचंद इस विचारशून्यता को गहराई से समझ रहे थे. उनकी यही समझ उनके साहित्य का आधार है. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इसकी वाजिब समीक्षा अब तक हिंदी साहित्य में नहीं हुई है.

किसी भी लेखक का एक विचार पक्ष होता है. यदि लेखक साधारण स्तर का हुआ, तब उसके युग की प्रतिनिधि विचारधारा उसकी विचारधारा बन जाती है और अपनी लेखनी द्वारा वह उस विचारधारा का प्रचारक बन जाता है. यदि लेखक स्वयं में एक विचारक है, तब उसका साहित्य उसके विचारों का पाठ बन जाता है और एक प्रस्ताव के रूप में वह अपने ज़माने के समक्ष प्रस्तुत होता है. कबीर और तुलसी स्वयं में एक विचार थे. उनका साहित्य उनकी विचारधारा की प्रस्तावना करता है. आधुनिक ज़माने में रवींद्रनाथ टैगोर की अपनी विचारधारा है; टॉलस्टॉय, चेखब की अपनी विचार-चेतना है. हाँ गोर्की की अपनी कोई विचारधारा नहीं है ,वह अपने ज़माने की एक खास विचारधारा के उन्नायक बनते हैं. चूकि वह विचारधारा उत्पीड़ित जनता केपक्ष की विचारधारा थी, इसलिए गोर्की जनता के लेखक बन जाते हैं.

प्रेमचंद अपने समय की किसी प्रचलित विचारधारा के प्रचारक नहीं बने दीखते. हालांकि उनपर कई बार गांधीवादी और राष्ट्रवादी होने की बात कही गयी है. लेकिन उन्हें तय वैचारिक खांचों में रखना मुश्किल प्रतीत होता है. उनपर गांधी और राष्ट्र सवार नहीं दीखते. हाँ, मनुष्य की चिंता उनके साहित्य में प्रमुखता से अवश्य है . लेकिन वह मनुष्य कौन -सा और कैसा है ? क्या प्रेमचंद के यहां राष्ट्रीय आंदोलन के भारत- व्याकुल पात्र प्रमुखता लिए हुए दीखते हैं ? शायद नहीं . किसान -मजदूर, उत्पीड़ित स्त्रियां और दलित -अछूत उनकी कहानियों

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 3, May 2022 |

और उपन्यासों में आगे -आगे रहते हैं. सामंत -पुरोहित, जमींदार और जनता को अनेक प्रकार से ठगने वाले सरकारी कारिंदे उनके साहित्य में चिन्हित किये गए हैं. पाठकों को समझते देर नहीं लगती कि लेखक किनके पक्ष में खड़ा है.

प्रेमचंद के ज़माने में उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय संघर्ष चरम पर था . देश एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने केलिए उत्सुक और सक्रिय था . राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर गांधी के हाथों में जरूर आ गयी थी किन्तु अनेक विचारधाराएं उभरना चाहती थीं. प्रगतिशील प्रवृति की विचारधाराएँ भी; और दकियानूसी प्रवृति की विचारधाराएं भी. समाजवाद , हिंदुत्व और इस्लामिक कट्टरतावाद की वैचारिक प्रवृतियां उनके जीवनकाल में ही उभरीं. आंबेडकर और भगत सिंह भी उभरे. लेकिन प्रेमचंद ने हमेशा उत्पीड़ित जनता के नजरिये से ज़माने को देखा, इसलिए वह प्रगतिशील सामाजिक मूल्यों के साथ रहे. वह जब उम्र के सैंतीसवें साल में थे, तब रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई और दुनिया में पहली दफा मिहनतकशवर्ग राजसत्ता में आया. 1922 में उनके बाजू में चौरीचौरा की घटना हुई जिसमे किसानों ने पुलिस चौकी पर हमला कर कई सिपाहियों की हत्या कर दी और और पुलिस स्टेशन को आग के हवाले कर दिया. इसके बाद गाँधी ने राष्ट्रीय आंदोलन के स्थगित किये जाने की घोषणा कर दी. बोल्शेविक क्रांति और चौराचौरी की घटना में बस पांच साल का अंतराल था. प्रेमचंद के दिल -दिमाग को ये घटनाएं निश्चय ही प्रभावित कर रही थीं.

लेकिन उनके समय में राजनैतिक आंदोलनों के साथ -साथ एक सामाजिक विचारधारा व आंदोलन भी हिंदी इलाके में उठ रहा था, जिसका केंद्र जाने -अनजाने बनारस बन रहा था. महाराष्ट्र से ब्राह्मणवादी राष्ट्रवाद का जो गुबार बाल गंगाधर तिलक की अगुआई में उठा था, वह महाराष्ट्र से अधिक हिंदी इलाकों में फैला. महाराष्ट्र में तो फुले और आंबेडकर के नेतृत्व में उस विचारधारा को चुनौती मिली ,किन्तु हिंदी क्षेत्र इनके लिए बिलकुल खाली था. तिलक की वैचारिकता को महाराष्ट्र से अधिक इसी इलाके में अनुकूलता मिली. विशिष्ट स्थिति यह बनी कि यहां का साहित्य इसका वाहक बन गया. इसके कारणों को समझना मुश्किल नहीं है. फलतः हिंदी साहित्य धीरे -धीरे राष्ट्रवाद के कोलाहल से भर गया और ऐसा लगा मानो साहित्य ने ही उपनिवेशवाद से मुक्ति का पूरा जिम्मा ले लिया हो. इसकी परिणति हुई कि सामाजिक स्वतंत्रता और परिवर्तन के सवाल साहित्य के धरातल पर पीछे छूटने, अथवा कमजोर पड़ने लगे. हिंदुत्व से आप्लावित प्रचंड राष्ट्रवाद हिंदी साहित्य की आत्मा बनती चली गयी.

छायावादी काव्य आंदोलन से सार्थक हस्तक्षेप की अपेक्षा बनती थी, लेकिन यह भी संभव नहीं हुआ. प्रेमचंद ने इस स्थिति को भांपा लिया था. अपने प्रथम कथा -संकलन 'सोजे वतन' की एक कहानी 'संसार का सब से अनमोल रतन' का जब हम अध्ययन करेंगे ,तब पाएंगे कि प्रेमचंद की भारत -व्याकुलता चरम पर है . लेकिन यह व्याकुलता प्रेमचंद की बाद की कहानियों में नहीं मिलती. इस व्याकुलता का परित्याग कमसे कम उनने अपने लेखन के दूसरे दौर में तो कर ही दिया था. 'अनमोल रतन ' मार्का कहानियां फिर नहीं मिलतीं, तो इसके कारण थे. इस बीच उनके नज़रिये में बदलाव आया था. हम देखेंगे कि उनके वर्ण्य और पात्र किसान -मजदूर, दलित, स्त्रियां और समाज के उपेक्षित लोग और उनके सरोकार होने लगते हैं. यह सब उनके वैचारिक परिवर्तन का ही साक्ष्य देता है.

प्रेमचंद ने इस बात को समझा था कि सामाजिक स्वतंत्रता के बिना वास्तविक स्वतंत्रता मुमकिन नहीं होगी. राजनैतिक क्रांतिकारिता यदि सामाजिक क्रांतिकारिता के बगैर हो वह बहुत अर्थपूर्ण नहीं होती की बात को कांग्रेस की राजनीति से जुड़े गोखले, गांधी और नेहरू ने भी समझा था. कांग्रेस के भीतर तथाकथित नरम दल और गरम दल के भेद की बुनियाद सामाजिक प्रश्नों पर ही थी. विवाह वय विधेयक पर जब दोनों पक्ष बुरी तरह भिड़ गए, तब उनका सामाजिक चरित्र देश के समक्ष अधिक स्पष्ट हुआ. तिलक ने सामाजिक दकियानूसी ताकतों का साथ दिया था, बल्कि उनके प्रवक्ता बन गए थे. इसके साथ ही वह जुझारू राष्ट्रवाद की व्याख्या कर रहे थे. नरम दली ताकतें सामाजिक प्रश्नों को महत्वपूर्ण समझती थीं. उनका मानना था बिना सामाजिक परिवर्तन के राजनैतिक परिवर्तन संभव नहीं है. हिंदी क्षेत्र में मोतीलाल नेहरू ने इस प्रवृति को समझा और उन्होंने बेटे जवाहरलाल नेहरू को दोनों प्रवृत्तियों के भेद को बतलाया. वह तिलकवाद के विरुद्ध खड़े हुए. गोखले और गाँधी के समर्थन में नेहरू द्वय का आना वैचारिक स्तर पर था. इस मिजाज से जुड़ने में हिंदी लेखकों को कठिनाई हुई . वह हिंदुत्व के सामाजिक सरोकारों के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की बात करते थे.

लेकिन प्रेमचंद हिंदी की उपरोक्त मुख्य धारा से अलग दीखते हैं. सामाजिक प्रश्नों पर वह राष्ट्रीय नेताओं से भी अधिक सचेत -सतर्क हैं. सामाजिक -राजनैतिक गतिहीनता के वास्तविक कारणों की खोज वह प्रायः करते दीखते हैं. अपनी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में वह समाज की राजनीतिक -विमुखता के कारणों को चिन्हित किया है. यह सामंतवाद था, नवाबी थी, जिसने हमें काहिली से भर दिया था. वास्तविक राजा पकड़ कर ले जाया जा रहा है और नवाब शतरंज के राजा की लड़ाई लड़ रहे हैं. सामाजिक स्थिति भी ऐसी ही थी .लोगों को राष्ट्र से अधिक अपने वर्णधर्म की चिंता थी. सामंतवाद और ब्राह्मणवाद प्रेमचंद के समय के दो बड़े प्रश्न थे, जिनके उन्मूलन के बिना सच्चे राष्ट्रवाद की बुनियाद नहीं रखी जा सकती थी. प्रेमचंद आधुनिक हिंदी के पहले लेखक थे जिन्होंने स्पष्टतया ब्राह्मणवादी पाखंड को बार -बार अपनी रचनाओं में चिन्हित करने की कोशिश की है. हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था पर प्रश्न उठाने का साहस किसी हिंदी लेखक ने

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 3, May 2022 |

नहीं किया था. उन्होंने यह किया. उनपर मुकदमे दर्ज़ किये किये गए और कई तरह से उनकी अवमानना की गयी, लेकिन वह रुके नहीं. 'ठाकुर का कुआँ' कहानी उन्होंने उसी वर्ष लिखी, जिस वर्ष आंबेडकर के नेतृत्व में चौहद का जल सत्याग्रह चला.

'सद्गति ' और 'सवा सेर गेहूं ' जैसी कहानियों में ब्राह्मणवादी प्रपंचों का अपने तरीके से पर्दा -फास करने की कोशिश की. इन सब को लेकर उनपर लेखक समाज में टिप्पणियां भी हुईं. ऐसे ही किसी हमले से आहत हो उनने १२ जनवरी १९३४ को बाबू बनारसीदास जी लिख " उसने (किसी निर्मल ने) मुझ पर यह दोष लगाया है कि मैं ब्राह्मण वर्ग का द्रोही हूँ सिर्फ इसलिए कि मैंने इन पुजारियों और धार्मिक लुच्चे -लफंगों के कुछ पाखंडों का मज़ाक उड़ाया है. उनको वह ब्राह्मण कहता है और जरा भी नहीं सोचता कि उनको ब्राह्मण कहकर वह अच्छे -भले ब्राह्मणों का कितना अपमान करता है. ब्राह्मण का मेरा आदर्श सेवा और त्याग है, वह कोई भी हो. पाखण्ड और कट्टरता और सीधे -सादे हिन्दू समाज के अन्धविश्वास का फायदा उठाना इन पुजारियों और पंडों का धंधा है और इसीलिए मैं उन्हें हिन्दू समाज का एक अभिशाप समझता हूँ और उन्हें अपने अधःपतन केलिए उत्तरदायी समझता हूँ. वे इसी काबिल हैं कि उनका मखौल उड़ाया जाय और यही मैंने किया है. यह निर्मल और उसी थैली के चट्टे -बट्टे दूसरे लोग ऊपर से बहुत राष्ट्रीयतावादी बनते हैं मगर उनके दिल में पुजारी वर्ग की सारी कमजोरियां भरी पड़ी हैं और इसीलिए वे हम लोगों को गालियां देते हैं जो स्थिति में सुधार लाने की कोशिश कर रहे हैं. मैं कुछ नहीं समझ सका कि आप किस चीज में पञ्च बनने जा रहे हैं और मेरे खिलाफ फर्दे जुर्म क्या है. क्या वे कहानियां जिनमे मैंने इन पाखंडियों का मखौल उड़ाया है ? बराय मेहरबानी उन्हें पढ़ जाइये. बहुत नहीं हैं... वह द्वेष और विष से पूरी तरह मुक्त हैं."

प्रेमचंद सामाजिक सवालों पर किसी उहा -पोह में नहीं रहते थे. भारतीय संस्कृति के प्रसंग में कवि जयशंकर प्रसाद को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा " किस बात पर गर्व करें ,वर्णाश्रम धर्म पर ! जिसने हमारी जड़ खोद डाली... " तुलसीदास और उनके रामचरित मानस का उस दौर में साहित्यिक समाज में बड़ा मान था ,लेकिन प्रेमचंद ने उसे पढ़ने लायक कभी नहीं समझा. कोलकाता के उनके मित्र बनारसीदास चतुर्वेदी प्रेमचंद को वहां तुलसी जयंती पर बोलने केलिए आमंत्रित कर रहे थे. टैगोर ने मिलना चाहा था. लेकिन तुलसी जयंती के नाम पर उनने जाने से इंकार कर दिया. चतुर्वेदी जी को लिखा- अगर तुलसी जयंती की कैद मेरे ऊपर न लगायी होती तो मैं आ जाता . लेकिन तुलसी जयंती का सभापतित्व एक ऐसा व्यक्ति करे जिसने कभी तुलसी का अध्ययन नहीं किया और जो उनके नाम के साथ जुडी हुई अतिमानव बातों में विश्वास नहीं करता ,यह बात ही मुझे हास्यास्पद जान पड़ती है.' (कलम का सिपाही ' पृष्ठ ६०५) वैचारिक मामलों में वह ढुल-मुल बिलकुल नहीं थे.

दिन-रात, जाति-तंत्र और वाद के जाल बुन रहे कुछ व्याकुल तत्वों ने इधर के वर्षों में उनकी प्रतिबद्धता पर प्रश्न उठाये हैं. वे यह भूल जाते हैं कि जिस वातावरण और स्थान से प्रेमचंद ने ब्राह्मणवादी विचारधारा पर हल्ला बोला था, वह चुनौती भरा और मुश्किल कार्य था. वह अपने समय से बहुत आगे थे. उनकी सामाजिक क्रांतिकारिता एक समग्र और सम्यक विचारधारा का हिस्सा थी. हंस की सम्पादकीय टिप्पणियों से उनकी वैचारिकता के पक्ष स्पष्ट होते हैं. राष्ट्रीय आंदोलन केलिए गांधी का महत्व स्वीकारते हुए भी वह गांधीवाद से प्रभावित नहीं थे. उनकी स्थिति कुछ हद तक नेहरू जैसी थी. नेहरू के विचारों में जो उदारता थी, उसकी जो विश्वदृष्टि थी, उस से वह प्रभावित भी दीखते हैं. हंस की कमसे कम तीन सम्पादकीय टिप्पणियां नेहरू केंद्रित हैं, जिसमे प्रेमचंद उनके विचारों की प्रशंसा करते हैं, ख़ास कर समाजवादी आर्थिक विचारों की. आंबेडकर के पूना पैक्ट मामले पर उन्होंने दलित प्रसंग को राष्ट्रीयता से जोड़ कर देखा है. किसानों -मजदूरों और अन्य मिहनतक़श तबकों के पक्ष में वह बराबर खड़े दीखते हैं.

परिणाम

हिन्दी साहित्य में युग प्रवर्तक रचनाकार, अद्भुत रचनाधर्मिता के स्वामी, मानव मन के पारखी, शरतचंद्र चटोपाध्याय द्वारा 'उपन्यास सम्राट' की पदवी से सम्मानित, हिंदी कथा- साहित्य के पितामह, सशक्त शब्द- शिल्पी, कलम के कमाल के सिपाही मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में प्रगतिवाद, यथार्थवाद और गांधीवाद स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। राष्ट्रीय चेतना के मामले में प्रेमचंद पर गांधी जी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तो समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए वे साम्यवाद की पटरी पर चलना पसंद करते हैं।

मुंशी प्रेमचन्द ने जिस दौर में सक्रिय रूप से लिखना शुरू किया, वह छायावाद का दौर था। निराला, पंत, प्रसाद और महादेवी जैसे रचनाकार उस समय शिखर पर थे। उनसे हटकर प्रेमचन्द ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारते हुए छुआछूत, साम्प्रदायिकता, कृषक वर्ग की दुर्दशा, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, ग़रीबी, उपनिवेशवाद, नारी- मुक्ति, दलित उत्पीड़न आदि ज्वलंत मुद्दों पर लिखना शरू किया। मुंशी प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं, खासकर कहानियों व उपन्यासों में भारत के वंचित, शोषित, दलित, पिछड़े और विशेष रूप से देश के गरीब किसानों के जीवन- संघर्ष और त्रासदियों को उज़ागर किया है। उन्होंने मूक जनता का पक्ष लिया है जो दलित हैं, शोषित हैं, और निरुपाय हैं।

प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों के पात्र सामाजिक व्यवस्थाओं एवं रूढ़ियों से जूझते हैं और अपनी नियति के साथ-साथ भविष्य की इबारत भी गढ़ते हैं। पग- पग पर उन्हें यातना, दरिद्रता व नाउम्मीदी भले ही मिलती हो पर अंतत: वे हार नहीं मानते हैं और संघर्षों की जिजीविषा के बीच भविष्य की नींव रखते हैं।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में एक बार कहा था कि- "हमारी कहानियों में आपको पदाधिकारी, महाजन, वकील और पुजारी गरीबों का खून चूसते हुए दिखेंगे और गरीब किसान, मजदूर, अछूत और दरिद्र उनके आघात सहकर भी अपने धर्म और मनुष्यता को हाथ से न जाने देंगे, क्योंकि हमने उन्हीं में सबसे ज्यादा सच्चाई और सेवा भाव पाया है।''

प्रेमचंद के दलित और पिछड़े चरित्र गैर दलित और अगड़ी चरित्रों की तुलना में अधिक मानवीय, कारुणिक और तार्किक हैं, प्रतिरोधी और मुखर भी।

मानवीय मूल्यों के वाहक के रूप में प्रेमचंद भारतीय समाज के सबसे सफल चितेरे हैं। मानवता का व्यापक संदेश एवं युग का सजीव चित्रण उनके कथा-साहित्य की ख़ासियत है। उन्हें अपने समय के भारतीय समाज की वर्णीय एवं वर्गीय समाज की गहरी समझ थी। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रेमचंद ने लिखा कि- भारतीय राष्ट्र का आदर्श मानव शरीर है जिसके मुख, हाथ, पेट और पाँव- ये चार अंग हैं। इनमें से किसी भी अंग के अभाव या विच्छेदन से देह का अस्तित्व निर्जीव हो जाएगा। प्रेमचंद प्रश्न उठाते हैं कि यदि वर्णाश्रम व्यवस्था के पाँव माने जाने वाले शूद्रों का सामाजिक व्यवस्था से विच्छेदन कर दिया जाय तो इसकी क्या गति होगी? इसी आधार पर वे समाज में किसी भी प्रकार के छुआछूत का सख्त विरोध करते हैं। अपने एक लेख में वे लिखते हैं- "क्या अब भी हम अपने बड़प्पन का, अपनी कुलीनता का ढिंढोरा पीटते फिरेंगे। यह ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद हिन्दू जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। हम यह किसी तरह नहीं भूल सकते कि हम शर्मा हैं या वर्मा, सिन्हा हैं या चौधरी, दूबे हैं या तिवारी, चौबे हैं या पाण्डे, दीक्षित हैं या उपाध्याय। हम आदमी पीछे हैं, चौबे या तिवारी पहले और यह प्रथा कुछ इतनी भ्रष्ट हो गई है कि आज जो निरक्षर भट्टाचार्य है, वह भी अपने को चतुर्वेदी या त्रिवेदी लिखने में जरा भी संकोच नहीं करता।''

प्रेमचंद वर्ण व्यवस्था, ऊंच- नीच के भेदभाव और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदने को राष्ट्रीयता की पहली शर्त मानते थे। शास्त्रों की आड़ में दलितों के मंदिर प्रवेश को पाप ठहराने वालों को जवाब देते हुए प्रेमचन्द ने ऐसे लोगों की विद्या-बुद्धि व विवेक पर सवाल उठाया और कहा कि- "विद्या अगर व्यक्ति को उदार बनाती है, सत्य व न्याय के ज्ञान को जगाती है और इंसानियत पैदा करती है तो वह विद्या है और यदि वह स्वार्थपरता व अभिमान को बढ़ावा देती है, तो वह अविद्या से भी बदतर है।''

ब्रिटिश शासन के दौरान वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थकों द्वारा हिन्दू मंदिरों की दलितों से रक्षा करने के सन्दर्भ में वायसराय को सम्बोधित ज्ञापन की तीखी आलोचना करते हुए प्रेमचन्द ने वर्णाश्रम व्यवस्था समर्थकों की आलोचना करते हुए लिखा कि- "राष्ट्र की वर्तमान अधोगति हेतु ऐसे ही लोग जिम्मेदार हैं। दक्षिणा में अछूतों द्वारा दिए गये पैसे लेने में इन्हें कोई पाप नहीं दिखता पर किसी अछूत के मंदिर में प्रवेश मात्र से ही इनके देवता अपवित्र हो जाते हैं। यदि इनके देवता ऐसे निर्बल हैं कि दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाते हैं, तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है। देवता तो वह है, जिसके सम्मुख जाते ही चांडाल भी पवित्र हो जाये।" प्रेमचन्द धर्म का उद्देश्य मानव मात्र की समता मानते थे एवं किसी भी प्रकार के विभेद को राष्ट्र के लिये अहितकर मानते थे।

प्रेमचंद नारी को और उसकी अस्मिता से जुड़े सामाजिक सवालों को जीवन और परिवार के साथ जोड़कर देखने और उसी की परिधि में उन सवालों के जवाब तलाशने जाने के महत्व को जानते थे। उनकी कहानी 'बड़े घर की बेटी' में पारिवारिक द्वंद का जिस प्रकार समाधान होता है, उसे ध्यान में रखा जा सकता है। उनके नारी चरित्र पुरुष चरित्र की अपेक्षा अधिक प्रखर, प्रभावी, प्रगतिशील, केंद्रीय और मुखर हैं। स्त्रियों के साथ समाज में हो रहे दोयम दर्ज़े के बर्ताव का प्रेमचन्द ने कड़ा विरोध किया और अपनी रचनाओं में उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व का दर्ज़ा देते हुये, विकास की धुरी बनाया।

मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' मात्र किसान की संघर्ष गाथा नहीं है वरन् इसमें स्त्री की बहुरूपात्मक स्थिति को दर्शाते हुए उसकी संघर्ष गाथा को भी चित्रित किया गया है। 'सेवा सदन' में एक वेश्या के बहाने प्रेमचन्द्र ने धर्म के नाम पर चलने वाले अनाथालयों एवं पाखण्डों का भण्डाफोड़ किया है। 'कर्मभूमि' में मुन्नी द्वारा बलात्कारी सिपाही की हत्या स्त्री-मुक्ति के संघर्ष का अनूठा साक्ष्य है। इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद लिखते हैं:

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 3, May 2022 |

"पुरुषों में थोड़ी पशुता भी होती है, जिसे वह इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। वह पशुता उसे पुरुष बनाती है । विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है... जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुंचेगा, वह भी स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया --इन्हीं आधारों पर सृष्टि थमी हुई है, और ये स्त्रियों के गुण हैं।"

इसी प्रकार प्रेमचन्द ने कृषक समुदाय को भारत की प्राणवायु बताया। कर्ज में डूबे किसान, उन पर ढाये जाते जुल्म, उनकी बद से बद्तर होती गरीबी, व्यवस्थागत विक्षोभ और किसानों की समस्याओं को किसी भी साहित्यकार ने उस रूप में नहीं उठाया, जिस प्रकार प्रेमचन्द ने उठाया। उनका पूरा साहित्य ही दलित, स्त्री और किसान की लड़ाई का साहित्य है, जिसमें समता, न्याय और सामाजिक परिवर्तन की घोषणा है।

"अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-व्यवहार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता. . . जो संस्कृतियों और संपदाओं से लद नहीं गए हैं, अशिक्षित निर्धन हैं...वो उन लोगों से अधिक आत्मबल रखते हैं और न्याय के प्रति अधिक सम्मान दिखाते हैं, जो शिक्षित हैं, चतुर हैं, जो दुनियादार हैं जो शहरी हैं। यही प्रेमचंद का जीवन-दर्शन है। "

'गोदान' देश के किसानी जीवन और उसके संघर्ष का सबसे मार्मिक और संवेदनशील महाआख्यान है। प्रेमचंद ने इसमें भारतीय किसान की पतनोन्मुखी स्थिति के लिए शोषकों के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और दुराग्रहों को जिम्मेदार माना है। 'गोदान' में प्रेमचंद की साहित्य संबंधी विचारधारा 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तक की पूर्णता प्राप्त करती है। एक सामान्य किसान को पूरे उपन्यास का नायक बनाना भारतीय उपन्यास परंपरा की दिशा बदल देने जैसा था।

प्रेमचंद ने किसानों के शोषण-उत्पीड़न को न केवल चित्रित किया है, बल्कि इनके विरोध की चेतना को भी पकड़ा है। किसानों के शोषकों की पहचान सामंतों, पुरोहितों एवं महाजनों के रूप में की गयी है।

प्रेमचंद ने अनुभव किया कि सामाजिक समस्याओं का मूल कारण दूषित आर्थिक व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत पूंजीवाद और औद्योगिकरण की शक्ति धन के असमान वितरण को बढ़ावा देकर विषमता उत्पन्न करती है। 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक से लिखे अपने निबंध में वे लिखते हैं: "जिनके पास पैसा है, वह देवता तुल्य है; उसका अंतःकरण कितना भी काला क्यों ना हो। साहित्य, संगीत, कला सभी धन की देहरी पर माथा टेकते हैं।"

साहित्य बुनियादी तौर पर 'जीवन की आलोचना' है; प्रेमचंद भी साहित्य की इस परिभाषा को मान्यता देते थे। हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुंचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा करती हैं। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊंचे दर्जे की होती है। साहित्य का उद्देश्य मानव की अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है।

प्रेमचंद मानते थे कि 'अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। साहित्य केवल नायक- नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किंतु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है। सन 1936 में लखनऊ में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन में 'साहित्य का उद्देश्य' पर प्रेमचंद ने जो अध्यक्षीय वक्तव्य दिया, उसका सार इन पंक्तियों में समाहित है :

" जब तक साहित्य का काम केवल मन बहलाव का सामान जुटाना, केवल लोरियां गा- गा कर सुलाना, केवल आंसू बहा कर जी हल्का करना था, तब तक इसके लिए कर्म की आवश्यकता नहीं थी... मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तुएं नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो-- जो हमें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"

*चापलूसी का जहरीला प्याला आपको तब तक नहीं नुकसान पहुंचा सकता जब तक कि आपके कान उसे अमृत समझ कर पी ना जाए।

*डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है।

*विपत्ति से बढ़कर अनुभव सिखाने वाला कोई भी विद्यालय आज तक नहीं खुला।

*जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है, समझ लीजिए वह खुदा(ईश्वर) से उतना ही दूर है।

* खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है, जीवन नाम है, आगे बढ़ते रहने की लगन का।

* दौलतमंद आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है।

* आत्मसम्मान की रक्षा हमारा सबसे पहला धर्म है

* लिखते तो वह लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोग विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया, वो क्या लिखेंगे?

*न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं। इन्हें वह जैसे चाहती है, वैसे नचाती है।

प्रेमचंद ने तक़रीबन 300 कहानियाँ,14 उपन्यास, कई निबंध और पत्र भी लिखे हैं। उनकी लगभग सभी कहानियों का संग्रह उनके मरणोपरांत 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 खण्डों में प्रकाशित किया गया है। ग़ुरबत या गरीबी की विडंबना, संघर्ष और दुख को प्रेमचंद ने अपने ख़ास अंदाज़ में बयान किया है। पाठक केवल कथ्य contents (क्या कहा गया) से ही द्रवित नहीं होता, शिल्प craft (कैसे कहा गया) से भी वह प्रभावित होता है। सहज शिल्प के माध्यम से सजीव कथा को कहना ही कहानी है। प्रेमचंद इस कसौटी पर खरे उतरते हैं।

हिन्दी कथा- साहित्य को सर्वप्रथम प्रेमचंद ने ही प्रवाहयुक्त मुहावरेदार, सुगम, सुबोध, साधारण बोलचाल की बहुलता लिये पात्रानुकूल भाषा प्रदान की। कहानी में प्रयुक्त भाषा पात्रों की उलझी मन:स्थिति तथा बाहरी संघर्ष के यथार्थ का सशक्त प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। उन्होंने अपने कथा- साहित्य में गाँवों और कस्बों में आम आदमी द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली जाने वाली बोलचाल की भाषा को नई पहचान प्रदान की। जन- भाषा की क्षमता एवं सामर्थ्य 'शुद्धता' से नहीं, 'निखालिस होने' से नहीं अपितु विचारों एवं भावों को व्यक्त करने की ताकत से आती है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया, जहाँ पहले साहित्य मायावी भूल-भुलैयों में पड़ा स्वप्नलोक और विलासिता की सैर कर रहा था, ऐसे में प्रेमचन्द ने कथा साहित्य में जनमानस की पीड़ा को उभारा। उनके लेखन की यह शक्ति है कि घटना सत्य से ज्यादा जीवन के तथ्यपूर्ण सत्य की स्थापना करती है। इसीलिए प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० विपिन चन्द्र ने एक बार टिप्पणी की थी-"यदि कभी बीसवीं शताब्दी में आजादी के पूर्व किसानों की हालत के बारे में इतिहास लिखा जाएगा तो इतिहासकार का प्राथमिक स्त्रोत होगा प्रेमचंद का 'गोदान', क्योंकि इतिहास कभी भी अपने समय के साहित्य को ओझल नहीं करता।"

प्रेमचंद के युग-प्रवर्तक अवदान की चर्चा करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र लिखते हैं :

"प्रथमतः उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप से जोड़ने का काम किया।"

प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किंतु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रहा है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है। उनके पात्र प्रायः वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं।

प्रेमचंद पर शोधकर्ता श्री कृष्ण यादव अपने आलेख 'साहित्य से इतर प्रेमचंद की प्रासंगिकता' में लिखते हैं कि 'साहित्य से इतर सामाजिक विमर्शों पर प्रेमचन्द के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं और उनकी रचनाओं के पात्र आज भी समाज में कहीं न कहीं जिन्दा हैं। प्रेमचन्द जब अपनी रचनाओं में समाज के उपेक्षित व शोषित वर्ग को प्रतिनिधित्व देते हैं तो निश्चितत: इस माध्यम से वे एक युद्ध लड़ते हैं और गहरी नींद सोये इस वर्ग को जगाने का उपक्रम करते हैं।

देश आज भी उन्हीं समस्याओं से जूझ रहा है जिन्हें प्रेमचन्द ने काफी पहले रेखांकित कर दिया था, चाहे वह जातिवाद या साम्प्रदायिकता का जहर हो, चाहे कर्ज की गिरफ्त में आकर आत्महत्या करता किसान हो, चाहे नारी की पीड़ा हो, चाहे शोषण और सामाजिक भेद-भाव हो। इन बुराइयों के आज भी मौजूद होने का एक कारण यह है कि राजनैतिक सत्तालोलुपता के समानान्तर हर तरह के सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आन्दोलन की दिशा नेतृत्वकर्ताओं को केन्द्र-बिन्दु बनाकर लड़ी गयी जिससे मूल भावनाओं के

विपरीत आन्दोलन गुटों में तब्दील हो गये एवं व्यापक व सक्रिय सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा कुछ लोगों की सत्तालोलुपता की भेंट चढ़ गयी।'

अंतर्राष्ट्रीय आवारा पूंजीवाद के गर्भ से निकले बाजारवाद के संपोषण का ही नतीजा है कि देश वर्तमान में सत्ता के संरक्षण में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उपनिवेश में बदलता जा रहा है। आंतरिक उपनिवेश की नई प्रक्रिया तेजी से जारी है। लगभग 10- 15 करोड़ भारतीय शेष भारतीयों का अपना उपनिवेश बनाने पर आमादा हैं। इस विकट स्थिति को समझने और उससे निपटने की जुगत जुटाने में कालजयी रचनाकार मुंशी प्रेमचंद की सोच प्रासंगिक बनी रहेगी।

वस्तुत: प्रेमचन्द एक ऐसे राष्ट्र-राज्य की कल्पना करते थे, जिसमें किसी भी तरह का भेदभाव न हो- न वर्ण का, न जाति का, न रंग का और न धर्म का। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीयता को पारिभाषित करते हुए लिखा कि- "हम जिस राष्ट्रीयता की परिकल्पना कर रहे हैं, उसमें जन्मगत वर्ण व्यवस्था की गंध तक नहीं होगी।

उन्होंने यह अनुभव किया कि उनके समय की परिस्थितियों में समग्र भारत को एक सूत्र में पिरोने का आधार धर्म नहीं बल्कि आर्थिक समानता ही हो सकती है। प्रेमचंद का सपना हर तरह की विषमता, सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक-वैमनस्य से परे एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना था जिसमें समता सर्वोपरि हो। वे इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे कि भारतीय समाज में विद्यमान भेदभाव व पृथकता ही उपनिवेशवाद की जड़ रहा है।

भारतीय समाज-व्यवस्था की यथार्थ स्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक लेख में लिखते हैं :

"मनुष्य-समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने-खपनेवालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने वश में किए हुए हैं। उन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाए, खून गिराए और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाए।"

'कर्मभूमि' में भी एक स्थान पर प्रेमचन्द इस ओर लक्ष्य कर गये हैं। अमरकांत कहता है :

"एक अदमी दस रुपये में गुज़र करता है, दूसरे को दस-हज़ार क्यों चाहिए ? यह धाँधली उसी वक्त तक चलेगी जब-तक जनता की आँखें बन्द हैं। क्षमा कीजिएगा, एक आदमी पंखे की हवा खाए और ख़सख़ाने में बैठे और दूसरा आदमी दोपहर की धूप में तपे, यह न न्याय है, न धर्म, यह धाँधली है।"

निष्कर्ष

प्रेमचंद के राजनीतिक-सामाजिक विषयों पर उनके लेख आज भी प्रासंगिक कहे जा सकते हैं। 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' शीर्षक से एक लेख प्रेमचंद ने जनवरी 1934 में लिखा, जिसमें साम्प्रदायिक ताकतों के वैचारिक चरित्र को उज़ागर करते हुए वे लिखते हैं:

'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलने में शायद लज्जा आती है, इसलिए वह उस गधे की भांति, जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रौब जमाता फिरता था, संस्कृति का खोल ओढ़कर आती है।

हिन्दू अपनी संस्कृति को क़यामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गये हैं कि अब न कहीं हिन्दू संस्कृति है, न मुस्लिम संस्कृति और न कोई अन्य संस्कृति। अब संसार में केवल एक संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति, मगर आज भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का रोना रोये चले जाते हैं।'

आजकल अतीत का जोरशोर से जो महिमामंडन किया जा रहा है। इस संदर्भ में कथाकार प्रेमचंद ने क्या लिखा है, यह भी पढ़ लें "बन्धनों के सिवा और ग्रंथों के सिवा हमारे पास क्या था। पंडित लोग पढ़ते थे और योद्धा लोग लड़ते थे और एक-दूसरे की बेइज्जती करते थे और लड़ाई से फुरसत मिलती थी तो व्यभिचार करते थे। यह हमारी व्यावहारिक संस्कृति थी। पुस्तकों में वह जितनी ही ऊँची और पवित्र थी,व्यवहार में उतनी ही निन्द्य और निकृष्ट।"

प्रेमचंद 'राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता' शीर्षक निबंध में लिखते हैं, 'राष्ट्रीयता वर्तमान युग का कोढ़ है, उसी तरह जैसे मध्यकालीन युग का कोढ़ सांप्रदायिकता थी। नतीजा दोनों का एक है। सांप्रदायिकता अपने घेरे के अंदर शांति और सुख का राज्य स्थापित कर देना

चाहती थी, मगर उस घेरे के बाहर जो संसार था, उसको नोचने-खसोटने में उसे ज़रा भी मानसिक कलेश न होता था। राष्ट्रीयता भी अपने परिमित क्षेत्र के अंदर रामराज्य का आयोजन करती है।'

प्रेमचंद हमारी गंगा-जमुनी तहजीब के अगुआ साहित्यकार हैं। वे जितने हिंदी के हैं उतने ही उर्दू के भी। उन्होंने 'ईदगाह' और 'रामलीला' जैसी कहानियां लिखकर असली हिंदुस्तान की तस्वीर रखी है। जहां जात-पात और महजबी भेदभाव से ऊपर होकर इंसानियत को तरजीह दी गई है।

प्रेमचंद के लिए इंसानियत सबसे अहम है। प्रेमचंद हर धर्म के भीतर इसी की तलाश करते हैं। जहां उन्हें बुराई दिखती है वे उसका कड़ाई से बिना कोई मुरौव्वत के विरोध करते हैं ; जो उन्हें अच्छाई दिखती है उसकी जमकर सराहना भी करते हैं।

प्रेमचंद में समस्याओं के समन्वय की अद्‌भुत क्षमता थी। भारत जैसे विविधताओं वाले देश में, जहाँ धर्म-सम्प्रदाय, वर्ण, जाति आदि की विचित्र विविधताएँ विद्यमान हैं, लोकनायक वही बन सकता है जो इन विविधताओं में समन्वय स्थापित कर सके। प्रेमचंद ने देश के दो प्रमुख सम्प्रदायों - हिन्दू और मुसलमान के बीच समन्वय स्थापित करने का आजीवन प्रयास किया। उन्होंने हिन्दी-उर्दू साहित्य और भाषा में भी समन्वय स्थापित करने की भरपूर चेष्टा की। गाँधी और मार्क्स में समन्वय किया, आदर्श और यथार्थ में समन्वय किया तथा समाज और साहित्य में भी समन्वय स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसीलिए वह लाखों-करोड़ों पाठकों के चहेते बन सके। प्रेमचंद की महानता का रहस्य उनकी इसी समन्वित अन्तर्दृष्टि में निहित है।

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 17. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
2. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 18. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
3. ↑ रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 15
4. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 19. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
5. ↑ बाहरी, डॉ॰ हरदेव (१९८६). साहित्य कोश, भाग-2,. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड. पृ॰ ३५६.
6. ↑ "Munshi Premchand: गांधी और प्रेमचंद का साथ-साथ चलना हिंदी साहित्य में एक महान उपलब्धि". Dainik Jagran. अभिगमन तिथि 2020-07-31.
7. ↑ बाहरी, डॉ॰ हरदेव (१९८६). साहित्य कोश, भाग-2,. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड. पृ॰ ३५७.
8. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 20. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
9. ↑ यह उपन्यास उर्दू साप्ताहिक 'आवाजे खल्क' में 8 अक्टूबर 1903 से 1 फ़रवरी 1905 तक धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक का नाम छपा था- मुंशी धनपतराय उर्फ नवाबराय इलाहाबादी। बाद में स्वयं प्रेमचंद ने इसका हिन्दी तर्जुमा 'देवस्थान रहस्य' नाम से किया, जो उनके पुत्र अमृतराय द्वारा उनके आरंभिक उपन्यासों के संकलन 'मंगलाचारण' में संकलित है।
10. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 21. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
11. ↑ NEWS, SA (2021-07-30). "Munshi Premchand Jayanti (मुंशी प्रेमचंद जयंती): 'गोदान' उपन्यास के रचयिता प्रेमचंद के बारे में जाने सम्पूर्ण जानकारी". SA News Channel (अंग्रेज़ी में). अभिगमन तिथि 2021-07-30.
12. ↑ सिंह, डॉ॰बच्चन (1972). प्रतिनिधि कहानियाँ. वाराणसी: अनुराग प्रकाशन, विशालाक्षी, चौक. पृ॰ 9.
13. ↑ अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. पृ॰ 616-17.
14. ↑ वीर भारत, तलवार (2008). किसान राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचन्द:1918-22. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ॰ 19-20.
15. ↑ अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. पृ॰ 618.
16. ↑ अमृतराय (1976). प्रेमचंद क़लम का सिपाही. इलाहाबाद: हंस प्रकाशन. पृ॰ 619.

17. ↑ डॉ कमल किशोर गोयनका (संपादक)- "प्रेमचंद कहानी रचनावली", 6 भागों में, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, भूमिका (भाग-१)
18. ↑ प्रेमचंद (१९३८). सप्तसरोज. ज्ञानवापी, काशी: हिन्दी पुस्तक एजेंसी. पृ॰ 1.
19. ↑ हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या- 518
20. ↑ Desk, India com Hindi News. "जब प्रेमचंद ने लिखा पहला नाटक और मामा ने कर दिया गायब, पढ़िए 'कलम का सिपाही' की पहली कहानी". India News, Breaking News, Entertainment News | India.com. अभिगमन तिथि 2020-08-01.
21. ↑ "कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया था मुंशी प्रेमचंद". Dainik Jagran. अभिगमन तिथि 2020-07-31.
22. ↑ "रचना दृष्टि की प्रासंगिकता -मन्नू भंडारी" (एसएचटीएमएल). बीबीसी. मूल से 7 अगस्त 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 9 मार्च 2008.
23. ↑ "'हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक थे प्रेमचंद'" (एसएचटीएमएल). बीबीसी. मूल से 27 मई 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 9 मार्च 2008.
24. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 13. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
25. ↑ "'स्वस्थ साहित्य किसी की नक़ल नहीं करता'" (एसएचटीएमएल). बीबीसी. मूल से 28 सितंबर 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 9 मार्च 2008.
26. ↑ रामविलास, शर्मा (2008). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ॰ 185. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-267-0505-4.
27. ↑ "Oka Oori Katha" (अंग्रेज़ी में). मृणालसेन.ऑर्ग. मूल से 6 जनवरी 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 5 जुलाई 2008.
28. ↑ "हिंदी दिवस: हिंदी का यह लायक बेटा कभी निराश होकर फ़िल्म इंडस्ट्री छोड़ लौट गया था". Dainik Jagran. अभिगमन तिथि 2020-08-01.
29. ↑ "PREM CHAND WRITER" (पीएचपी) (अंग्रेज़ी में). इंडियन पोस्ट. मूल से 6 अप्रैल 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 25 जून 2008.
30. ↑ "लमही में शोध संस्थान बनेगा" (एसएचटीएमएल). बीबीसी. मूल से 27 मई 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 25 जून 2008.
31. ↑ प्रेमचंद मुंशी कैसे बने- डॉ॰ जगदीश व्योम, सिटीजन पावर, मासिक हिन्दी समाचार पत्रिका, दिसम्बर २०११, पृष्ठ संख्या- ०९